• कविताएं...

कोयल...

कोयल आम पर बैठी है
वसंत का मौसम भी है
आम पर मंजरियां भी आईं हुईं हैं
फिर भी कोयल कुहुक नहीं रही है
उसे कुछ नजदीक दिख रही है धरती
कुछ ऊहापोह में है वो
इसीलिए कुहुक नहीं पा रही है
हालांकि कुहुकने के लिए सही वातावरण है
मगर प्रश्न वही है
कि सब कुछ बदला बदला सा क्यों है
कोयल जानती नहीं
कि वास्तव में समय बदल गया है
वो जिस पर बैठी है
वो
आम का पेड़ नहीं
आम का बोन्साई है

पट्टी ...

न्याय की देवी
क्यों बांधती है पट्टी
अपनी आंखों पर
क्यों नहीं देखना चाहती है
वो कुछ भी
गांधारी भी तो बांधती थी
ऐसी ही पट्टी
पट्टियां अक्सर बनती हैं
कारण महाभारत का
तो
प्रतीक्षा कीजिए...

-पंकज सुबीर

• कहानी/रबीन्द्रनाथ टैगोर...

पोस्टमास्टर...

गतांक से आगे...

पोस्टमास्टर ने कातर स्वर में कहा, ''तबीयत ठीक नहीं मालूम होती। जरा मेरे माथे पर हाथ रखकर तो देख!''

घोर वर्षा के समय प्रवास में इस तरह बिल्कुल अकेले रहने पर रोग से पीड़ित शरीर को कुछ सेवा पाने की इच्छा होती है। तप्त ललाट पर शंख की चूड़ियां पहने कोमल हाथ याद आने लगते हैं। ऐसे कठिन प्रवास में रोग की पीड़ा में यह सोचने की इच्छा होती है कि पास ही स्नेहमयी नारी के रूप में माता और दीदी बैठी हैं और प्रवासी के मन की यह अभिलाषा व्यर्थ नहीं गई। बालिका रतन बालिका न रही। उसने फौरन माता का पद ग्रहण कर लिया। वह जाकर वैद्य को बुला लाई, यथा समय गोली खिलाई, सारी रात सिरहाने बैठी रही, अपने हाथों पथ्य तैयार किया और सैकड़ों बार पूछती रही, ''भैयाजी कुछ आराम है क्या?''

बहुत दिनों बाद पोस्टमास्टर जब रोग-शय्या छोड़कर उठे तो उनका शरीर दुर्बल हो गया था। उन्होंने मन में तय किया, अब और नहीं। जैसे भी हो, अब यहां से बदली करानी चाहिए। अपनी अस्वस्थता का उल्लेख करते हुए उन्होंने उसी समय अधिकारियों के पास बदली के लिए कलकत्ता दरख्वास्त भेज दी।

रोगी की सेवा से छुट्टी पाकर रतन ने दरवाजे के बाहर फिर अपने स्थान पर अधिकार जमा लिया। लेकिन अब पहले की तरह उसकी बुलाहट नहीं होती थी। वह बीच-बीच में झांककर देखती-पोस्टमास्टर बड़े ही अनमने भाव से या तो कुर्सी पर बैठे रहते या खाट पर लेटे रहते।

जिस समय इधर रतन बुलाहट की प्रतीक्षा में रहती, वे अधीर होकर अपनी दरख्वास्त के उत्तर की प्रतीक्षा करते रहते। दरवाजे के बाहर बैठी रतन ने हजारों बार अपना पुराना पाठ दुहराया। बाद में यदि किसी दिन सहसा उसकी बुलाहट हुई तो उस दिन कहीं उसका संयुक्त अक्षरों का ज्ञान गड़बड़ न हो जाए इसकी उसे आशंका थी। आखिर लगभग एक सप्ताह के बाद एक दिन शाम को उस की पुकार हुई। कांपते हृदय से उसने भीतर प्रवेश किया और पूछा, ''भैयाजी, मुझे बुलाया था ?''

पोस्टमास्टर ने कहा, ''रतन, मैं कल ही चला जाऊंगा।''

रतन, ''कहां चले जाओगे भैयाजी!''

पोस्टमास्टर, ''घर जाऊंगा।''

रतन, ''फिर कब लौटोगे?''

पोस्टमास्टर, ''अब नहीं लौटूंगा।''

रतन ने और कोई बात नहीं पूछी। पोस्टमास्टर ने स्वयं ही उसे बताया कि उन्होंने बदली के लिए दरख्वास्त दी थी, पर दरख्वास्त नामंजूर हो गई इसलिए वे इस्तीफा देकर घर चले जा रहे हैं। बहुत देर तक दोनों में से किसी ने और कोई बात नहीं की। दीया टिमटिमाता रहा और घर के जीर्ण छप्पर को भेदकर वर्षा का पानी मिट्टी के सकोरे में टप-टप करता टपकता रहा।

बड़ी देर के बाद इतने धीरे उठकर रसोईघर में रोटियां बनाने चली गई। पर आज और दिनों की तरह उसके हाथ जल्दी-जल्दी नहीं चल रहे थे। शायद उसके मन में रह-रहकर तरह-तरह की आशंकाएं उठ रही थीं। जब पोस्टमास्टर भोजन कर चुके तब उसने पूछा, ''भैयाजी, मुझे अपने घर ले चलोगे?''

मालिक ने कहा, ''रतन, मेरी जगह जो सज्जन आयेंगे मैं उन्हें कह जाऊंगा। वे मेरी ही तरह तेरी देख–भाल करेंगे। मेरे जाने से तुझे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है।''

इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेहपूर्ण और दयार्द्र हृदय से निकली थीं, किन्तु नारी के हृदय को कौन समझ सकता है! रतन इसके पहले बहुत बार अपने मालिक के हाथों अपना तिरस्कार चुपचाप सहन कर चुकी थी, लेकिन इस कोमल बात को वह सहन न कर पाई...

पोस्टमास्टर ने हंसकर कहा, ''वाह, यह कैसे हो सकता है!'' किन कारणों से यह बात सम्भव न थी, बालिका को यह समझाना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा।

रातभर जागते और स्वप्न देखते हुए बालिका के कानों में पोस्टमास्टर के हंसी-मिश्रित स्वर गूंजते रहे, 'वाह, यह कैसे हो सकता है।'

सवेरे उठकर पोस्टमास्टर ने देखा कि उनके नहाने के लिए पानी पहले से ही रख दिया गया है। कलकत्ता की अपनी आदत के अनुसार वे ताजे पानी से ही स्नान करते थे। न जाने क्यों बालिका यह नहीं पूछ सकी थी कि वे सवेरे किस समय यात्रा करेंगे। बाद में कहीं तड़के ही जरूरत न पड़ जाए, यह सोचकर रतन उतनी रात में ही नदी से उनके नहाने के लिए पानी भरकर ले आई थी। स्नान समाप्त होते ही रतन की पुकार हुई। रतन ने चुपचाप भीतर प्रवेश किया और आदेश की प्रतीक्षा में मौन भाव से एक बार अपने मालिक की ओर देखा।

मालिक ने कहा, ''रतन, मेरी जगह जो सज्जन आयेंगे मैं उन्हें कह जाऊंगा। वे मेरी ही तरह तेरी देख-भाल करेंगे। मेरे जाने से तुझे कोई चिंता करने की जरूरत नहीं है।'' इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये बातें अत्यन्त स्नेहपूर्ण और दयार्द्र हृदय से निकली थीं, किन्तु नारी के हृदय को कौन समझ सकता है! रतन इसके पहले बहुत बार अपने मालिक के हाथों अपना तिरस्कार चुपचाप सहन कर चुकी थी, लेकिन इस कोमल बात को वह सहन न कर पाई। उसका हृदय एकाएक उमड़ आया और उसने रोते-रोते कहा, ''नहीं, नहीं। तुम्हें किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं है, मैं रहना नहीं चाहती।''

पोस्टमास्टर ने रतन का ऐसा व्यवहार पहले कभी नहीं देखा था, इसलिए वे अवाक रह गए। नया पोस्टमास्टर आया। उसको सारा चार्ज सौंप देने के बाद पुराने पोस्टमास्टर चलने को तैयार हुए। चलते-चलते रतन को बुलाकर बोले, ''रतन, तुझे मैं कभी कुछ न दे सका, आज जाते समय कुछ दिए जा रहा हूं, इससे कुछ दिन तेरा काम चल जायेगा।''

तनख्वाह में जो रुपये मिले थे उनमें से राह-खर्च के लिए कुछ बचा लेने के बाद उन्होंने बाकी रुपये जेब से निकाले। यह देखकर रतन धूल में लोटकर उनके पैरों से लिपटकर बोली, ''भैयाजी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मेरे लिए किसी को कोई चिन्ता करने की जरूरत नहीं।'' और यह कहते-कहते वह तुरन्त वहां से भाग गई।

भूतपूर्व पोस्टमास्टर दीर्घ निःश्वास लेकर हाथ में कारपेट का बैग लटकाए, कन्धे पर छाता रखे, कुली के सिर पर नीली-सफेद धारियों से चित्रित टीन की पेटी रखवाकर धीरे-धीरे नाव की ओर चल दिए।

जब वे नौका पर सवार हो गए और नाव चल पड़ी, वर्षा से उमड़ी नदी धरती की छलछलाती अश्रु -धारा के समान चारों ओर छलछल करने लगी, तब वे अपने हृदय में एक तीव्र व्यथा अनुभव करने लगे। एक साधारण ग्रामीण बालिका के करुण मुख का चित्र मानो विश्व-व्यापी बृहत अव्यक्त मर्म-व्यथा प्रकट करने लग गया।

एक बार बड़े जोर से उनकी इच्छा हुई कि लौट जायें और जगत की गोद से वंचित उस अनाथिनी को साथ ले आयें। लेकिन तब तक पाल में हवा भर गई थी, वर्षा का प्रवाह और भी तेज हो गया था। गांव को पार कर चुकने के बाद नदी-किनारे का श्मशान दिखाई दे रहा था और नदी की धारा के साथ बढ़ते हुए पथिक के उदास हृदय में यह सत्य उदित हो रहा था, ''जीवन में न जाने कितना वियोग है, कितना मरण है, लौटने के क्या लाभ ! संसार में कौन किसका है!'

लेकिन रतन के हृदय में किसी भी सत्य का उदय नहीं हुआ। वह उस पोस्टऑफिस के चारों ओर चुपचाप आंसू बहाती चक्कर काटती रही। शायद उसके मन में हल्की-सी आशा जीवित थी कि हो सकता है, भैयाजी, लौट आयें। आशा के इसी बन्धन से बंधी वह किसी भी तरह दूर नहीं जा पा रही थी।

हाय रे बुद्धिहीन मानव-हृदय! तेरी भ्रान्ति किसी भी तरह नहीं मिटती। युक्ति शास्त्र का तर्क बड़ी देर बाद मस्तिष्क में प्रवेश करता है। प्रबल से प्रबल प्रमाण पर भी अविश्वास करके मिथ्या आशा को अपनी दोनों बांहों से जकड़कर तू भरसक छाती से चिपकाए रहता है। अन्त में एक दिन सारी नाड़ियां काटकर, हृदय का सारा रक्त चूसकर वह निकल भागती है। तब होश आते ही मन किसी दूसरी भ्रान्ति के जाल में बंध जाने के लिए व्याकुल हो उठता है।

-समाप्त

• शायरी...

नाज़ुक हैं नज़ाकत का बयां हो नहीं सकता
वो ऐसे हैं कुछ और गुमां हो नहीं सकता
तू और रह-ए-शौक़ इस आहिस्ता-रवी से
अब साथ तिरा उम्र-ए-रवां हो नहीं सकता

◆ ◆ ◆

मैं और शब-ए-वस्ल कहूं क्या तिरे दिल की
हो मुंह में मिरे तेरी ज़बां हो नहीं सकता
बन जाती है हर बात जो मौक़ा भी ख़ुदा दे
ये झूठ है सच अहद-ए-बुतां हो नहीं सकता

◆ ◆ ◆

जब लोगों में दोनों की बुज़ुर्गी है मुसल्लम
क्या शेख़-ए-हरम पीर-ए-मुग़ां हो नहीं सकता
हर राज़ में सौ बातें हैं हर बात में सौ राज़
अफ्साना-ए-दिल हम से बयां हो नहीं सकता

◆ ◆ ◆

हम ने भी 'रियाज़' आप के अशआर सुने हैं
ये लुत्फ़-ए-बयां लुत्फ़-ए-ज़बां हो नहीं सकता

-रियाज़ ख़ैराबादी

• अजी रहा हूं...

अब जी रहा हूं गर्दिश–ए–दौरां के साथ–साथ
ये नागवार फ़र्ज़ अदा कर रहा हूं मैं
ऐ रब्ब–ए–ज़ुल–जलाल तिरी बरतरी की ख़ैर
अब ज़ालिमों की मद्दह–ओ–सना कर रहा हूं मैं
'पोरिष' मेरी नवा से ख़फ़ा है फ़क़ीह–ए–शहर
लेकिन जो कर रहा हूं बजा कर रहा हूं मैं

–शोरिश काश्मीरी